श्रीमद्भगवद्गीता के 'विश्वरूपदर्शन' का जैन दार्शनिक दृष्टि से मूल्यांकन

डो. नलिनी जोशी

(१) गीता के 'विश्वरूपदर्शन' की पार्श्वभूमि, स्थान तथा महत्त्व :

महाभारत के भीष्मपर्वान्तर्गत गीता का[१] वर्णन हम 'दार्शनिक काव्य' इन शब्दों में कर सकते हैं। कुरुक्षेत्र की रणभूमि में किये गये इस श्रीकृष्णोपदेश में कभी कभी दार्शनिक अंश उभर आते हैं तो कभी-कभी काव्य के अंश अपना प्रभाव दिखाते हैं। आज उपलब्ध पूरी सात सौ श्लोकों की गीता किसी ने युद्धभूमि पर कहना तार्किक दृष्टि से असंभव सी बात है। इसी वजह से कई शोधार्थियों ने 'मूल गीता' की खोज का तथा 'प्रक्षेप' ढूँढने का प्रयास भी किया है। गीता के कई भक्तों ने इस 'विश्वरूपदर्शन' अध्याय की इतनी तारीफ की है कि जैन दार्शनिक दृष्टि से परीक्षण तथा मूल्यांकन करना हमें आवश्यक महसूस हुआ। इस शोधलेख में हमने यही प्रयास किया है।

गीता के हरेक अध्याय की पार्श्वभूमि अलग अलग है। दूसरा अध्याय संजय के निवेदन से आरम्भ होता है,[२] कुछ अध्यायों में कृष्ण सीधा कथन करने लगते हैं,[३] तथा कुछ अध्याय में अर्जुन प्रश्न पूछता है और कृष्ण उत्तर स्वरूप अध्याय का कथन करते हैं।[४] 'विश्वरूपदर्शन' गीता का ग्यारहवाँ अध्याय है। दसवे अध्याय में कृष्ण ने 'विभूतियोग' का कथन किया है। इस जगत् में जो जो विभूतिमत्, सत्त्व, श्रीमत् तथा ऊर्जित है, उन सब को कृष्ण ने परमेश्वर की विभूतियाँ मानी हैं। ये सब ईश्वर के अंशरूप हैं।[५] इस दर्शन से प्रभावित हुए अर्जुन की जिज्ञासा जागृत हो उठती है। पुरुषोत्तम का समग्र ऐश्वर्यसम्पन्न रूप वह देखना चाहता है। उसको ज्ञात है कि इस प्रकार का ऐश्वर्यसम्पन्न रूप चक्षुद्वारा देखने का उसका सामर्थ्य नहीं है, इसीलिए वह बहुत नम्रता से अपनी इच्छा प्रकट करता है।[६]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गीतोपदेश के प्रवाह में यह 'विश्वरूपदर्शन' विषय को समाविष्ट करने का कारण क्या है ? दार्शनिक दृष्टि से कम महत्त्व रखनेवाले इस काव्यमय, अद्भुत, रोमांचक, रौद्र वर्णन के मूलस्रोत कहाँ पाए जाते हैं ? वैदिक परम्परा के कौन-कौन से ग्रन्थों में इसका जिक्र किया है ? अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों की तरह इसकी खोज करते करते हम ऋग्वेद के 'सहस्रशीर्षा पुरुष:' इस सूक्त तक पहुँच जाते हैं । ऋग्वेद का पुरुषसूक्त, यजुर्वेद का रुद्राध्याय, अनेक प्रमुख उपनिषद्, श्रीमद्भागवत तथा अनेक अन्य पुराण तथा गीता का अनुकरण करनेवाली अनेक अन्य गीताओं में किसी न किसी स्वरूप में 'विश्वरूपदर्शन' आता ही है । पं. सातवळेकरजीने इसका इतना विस्तृत विवेचन अर्थसहित किया है कि वह इस शोधलेख में हम दोहरानेवाले नहीं हैं । जिज्ञासु पण्डितजीकी टीका देखें ।[७] आद्य शंकराचार्य, डो. राधाकृष्णन, योगी अरविन्द, लोकमान्य टिळक तथा अन्य कई अभ्यासकों ने इस 'विश्वरूपदर्शन' की बहुत सराहना की है । सभी अध्यायों का सार, गीता-पर्वत का सर्वोच्च शिखर, गीता के सुवर्ण पात्र का मिष्टान्न आदि स्तुतिसुमनों द्वारा अलङ्कृत ऐसे 'विश्वरूपदर्शन' का सही मूल्यांकन हम जैन दार्शनिक दृष्टि से करना चाहते हैं ।

(२) विश्वरूपदर्शन' का स्वरूप और वर्णन

इस परिच्छेद में गीता के विश्वरूपदर्शन का विस्तार से बयान नहीं किया है । घटनाक्रम तथा वर्णनक्रम उसी तरह रखके सिर्फ मुद्दे प्रस्तुत किये हैं । पूरा वर्णन ग्यारहवें अध्याय में होने के कारण सन्दर्भ भी नहीं दिये हैं । मुद्दों के अनन्तर हरेक पहलू का परीक्षण करेंगे ।

१. अर्जुन की विश्वस्वरूप देखने की जिज्ञासा, विश्वरूप देखने की असमर्थता।
२. कृष्ण द्वारा सैंकडों हजारों रूप, नानाविध दिव्यवर्ण आदि से युक्त आकृतियाँ इत्यादि दिखाना । देखने के लिए दिव्य चक्षु प्रदान करना।
३. संजय के द्वारा अनेक मुख, नयन, अलंकार, आयुध, माला, गंध वाली आकृतियों का बयान, सहस्र-सूर्य-प्रभा का अनुभव करना ।
४. अर्जुन के द्वारा दिव्य पुरुष के देह में सब प्राणिमात्र, ब्रह्मा, विष्णु,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महेश, यक्ष, किंनर, गंधर्व, आदित्य, इंद्र, रुद्र, मरुत्, सिद्धसंघ, राजाओं के समूह तथा कौरव, भीष्म, द्रोण, कर्ण और सब योद्धाओं को देखना।

५. उसी रूप में चंद्र-सूर्य, द्यावा-पृथिवी, अग्नि आदि पंचमहाभूत देखना।

६. उग्र, अद्भुत रूप, योद्धों द्वारा कराल दाढावाले मुख में प्रविष्ट होना, असहनीय उग्र तेज फैलना, किरीट, चक्रधारी, चतुर्भुज रूप उग्र में परिणत होना, त्रैलोक्य व्यथित होना तथा अर्जुन का भी भयभीत, खिन्न एवं व्यथित होना ।

७. कृष्ण का कालरूप में निवेदन, सभी योद्धाओं के मृत्यु की निश्चिति, अर्जुन का निमित्तमात्र होना, युद्ध के लिए प्रेरणा ।

८. भयग्रस्त अर्जुन का उस अद्भुत पुरुष को बार-बार वंदन ।

९. कृष्ण के शरीर में यह सारा देखकर अर्जुन का लज्जित होना । कृष्ण से पहले किये हुए बर्ताव के लिए अर्जुन द्वारा क्षमायाचना । पूर्वरूप में आने की विनती ।

१०. कृष्ण द्वारा कथन- 'मैंने प्रसन्न होकर, कृपा और योगविशेष से यह अद्भुत दर्शन करवाया है । कोई भी मानव या देव वेद, यज्ञ, अध्ययन, दान, क्रिया, तप आदि से भी यह दर्शन नहीं कर सकता ।

११. कृष्ण का आखिरी उपदेश-यह दर्शन केवल अनन्य भक्ति से हो सकता है । उसी से परमात्मा का ज्ञान, दर्शन और उस में प्रवेश शक्य है। जो व्यक्ति परमेश्वर जैसा (समत्वबुद्धियुक्त) वर्तन करता है, तथा कर्म करता है, भक्त होता है, अनासक्त और प्राणिमात्रों के लिए बैररहित होता है, वह ईश्वर या परमात्मरूप होता है ।

अब इसका एक एक पहलू लेकर जैन दृष्टि से परीक्षण का प्रयास करेंगे ।

(१) अर्जुन की जिज्ञासा तथा असमर्थता प्रकट करना

विश्व का गूढ स्वरूप जानने की जिज्ञासा तो हरेक चिंतनशील

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानव हजारों सालों से रखता आया है। अनेक उपनिषदों में 'कोऽहं' प्रश्न के द्वारा इस जिज्ञासा का प्रकटीकरण किया है। केनोपनिषद् में 'केन' शब्द के द्वारा यही जिज्ञासा दिखलाई है। आचारांग के आरंभ में भी जीवों के अस्तित्व के बारे में पृच्छा की है। प्रश्न यह उठता है कि क्या ये जिज्ञासा रणांगण में, युद्धप्रसंग में की जा सकती है ? गीता में बताएँ हुए अनेक मुद्दों के बारे में यही प्रश्न ऊठता है। आत्मा का अमरत्व, देह की क्षणभंगुरता, अनासक्त होना, निष्काम होकर कर्म करना, स्वधर्मपालन की प्रेरणा आदि मुद्दे संक्षेप में कहे तो ठीक हैं लेकिन पूरा ध्यानयोग, भक्तियोग आदि का कथन बिलकुल ठीक या तर्कसंगत नहीं लगता। यह कोई प्रवचन का समय या तीर्थंकरों का समवसरण या धर्मसभा नहीं है कि ऐसे प्रश्न किये जायें और इतनी सुविस्तृतता से उत्तर भी दिये जायें। यह मुद्दा भी थोडी देर के लिए बाजू में रखेंगे।

जैन दर्शन की दृष्टि से विश्व का विराट स्वरूप देखने की जिज्ञासा भी ठीक है लेकिन खुद की असमर्थता की जानकारी होते हुए भी ऐसी विनती करना और वह सर्वज्ञ ने मान्य करना ठीक नहीं है। हम कृष्ण की जगह सर्वज्ञ, तीर्थंकर या केवली को रखते तो जैन दर्शन की दृष्टि से उत्तर है कि विश्व का दर्शन करना एक ज्ञानविशेष है। मानव खुद की श्रद्धा, चारित्र तथा पुरुषार्थ द्वारा आध्यात्मिक प्रगति करे तो विश्वरूप उस में अपने आप प्रकट होता है। हरेक जीव स्वतंत्र है। सर्वज्ञ में विश्व को जानने का तथा देखने का सामर्थ्य है[६] लेकिन वे अपने ज्ञान का संक्रमण नहीं कर सकते।

अर्जुन ने खुद की असमर्थता तो इतने स्पष्ट शब्दों में प्रकट की है कि ऐसा व्यक्ति तो जैन दर्शन के अनुसार विश्वस्वरूप जान या देख नहीं सकता।

(२) कृष्ण द्वारा रूपदर्शन कराना तथा दिव्य दृष्टि का प्रदान

(अ) पहले तो कृष्ण अर्जुन से कहता है कि 'पश्य में पार्थ रूपाणि' इसका मतलब है कि कृष्ण खुद को परमेश्वर स्वरूप में प्रस्तुत करके कृष्ण के देह के अंतर्गत विराट विश्वस्वरूप दिखा रहा है।[९] जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शन के अनुसार विश्व की निर्मिती, परिपालन तथा संहार करनेवाला और विश्व के विराट रूप को खुद में समेटनेवाला कोई भी ईश्वर, परमेश्वर या ईश्वरीय अवतार नहीं माना गया है ।

सर्वज्ञ अगर केवली इस प्रकार खुद के देह में ऐसा विराट दर्शन कभी नहीं करवाते । विश्व की समग्र वस्तुओं का पर्यायसहित ज्ञान उनको होता है । लेकिन उसमें असली विश्वस्वरूप यथातथ्य से दिखाई देता है कोई भी अद्भुतता या विचित्रता नहीं होती । वे जब विश्वस्वरूप का कथन करते हैं तब वह उपदेश शब्दरूप ही होता है ।[१०] जैन दर्शन की दृष्टि से विश्वदर्शन की चाह से या दिखानेवाले की इच्छा से भी यह विराट विश्वदर्शन इस प्रकार से संभव नहीं है ।

जैन दर्शन के अनुसार देवों का शरीर वैक्रियिक होता है ।[११] वे पृथ्वीपर भी आ सकते है । अपनी विकुर्वणा-शक्ति के द्वारा इस प्रकार के अद्भुत रूप दिखा सकते हैं । इस दृष्टि से कृष्ण को देवगति का एक जीव माना जा सकता है । लेकिन इसमें गीता की दृष्टि से और कृष्णचरित की दृष्टि से बड़ी आपत्ति आ सकती है । क्योंकि कृष्ण तो मानव हैं । फिर भी खुद को परमेश्वर या परमात्मा रूप में प्रस्तुत करते हैं ।[१२] जैन दर्शन के अनुसार मानव या देवगति का कोई भी जीव इस प्रकार का परमेश्वर नहीं होता ।

कृष्ण के कथनानुसार अगर यह विश्वरूप दिखाने की शक्ति उसकी यौगिक शक्ति या ऐश्वर्य माना जाय,[१३] तो तीर्थंकर, केवली में भी ऐसी अनंत शक्तियाँ होती हैं ।[१४] लेकिन किसी के अनुरोध से अपनी यौगिक शक्ति का इस प्रकार का प्रगटीकरण जैन शास्त्र को सम्मत नहीं है ।

(ब) कृष्ण जानता है कि अर्जुन के चर्मचक्षुओं में विश्वरूप देखने का सामर्थ्य नहीं है । इसलिए वह कहता है कि 'दिव्यं ददामि ते चक्षुः' । जैन दर्शन के अनुसार ये दिव्यचक्षु ज्ञानचक्षु ही हो सकते हैं । ज्ञानचक्षु में सबकुछ देखने का सामर्थ्य भी है । लेकिन खुद के प्रयत्न के द्वारा प्राप्त किए हुए ज्ञानचक्षु से ही साधक देख सकता है । दिव्यचक्षु किसी दूसरे ने देने की या लेने की वस्तु नहीं है । जैन दर्शन के अनुसार कृष्ण तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्जुन दो स्वतंत्र जीव हैं । और कभी भी एक जीव दूसरे की आध्यात्मिक शक्ति के बारे में हस्तक्षेप नहीं करता ।

अर्जुन को मर्यादित समय के लिए प्राप्त हुई इस दिव्य दृष्टि की अगर जैन दर्शन के अनुसार उपपत्ति लगानी ही है तो हम अनवस्थित अवधिज्ञान के द्वारा यह उपपत्ति लगा सकते हैं । क्योंकि यह अवधिज्ञान मर्यादित क्षेत्र में, मर्यादित काल में और कभी-कभी होता है ।[१५] लेकिन ऐसा मानने में भी आपत्ति है । क्योंकि अनवस्थित अवधिज्ञान के द्वारा भी जीव विश्व का अद्भुत रूप में दर्शन नहीं कर सकता, यथातथ्य रूप में ही कर सकता है । जैन दर्शन के अनुसार यह कुअवधिज्ञान माना जा सकता है ।[१६]

(३.४.५.) संजय और अर्जुन के द्वारा विश्वरूपदर्शन की अपूर्णता

संजय और अर्जुन के द्वारा वर्णित विश्वदर्शन में नियोजन तथा सुसंबद्धता का अभाव दिखाई देता है । गीता में ही अनेक जगह प्रकृति की सहायता से विश्वनिर्मिती की प्रक्रिया का विस्तार से क्रमबद्ध वर्णन आता है । कृष्ण कहता भी है कि 'मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरं' ।[१७] अगर ये सच है तो कम से कम चर और अचर याने जंगम और स्थावर सब सृष्टि के कुछ अंश तो निर्दिष्ट होना अपेक्षित है । यहाँ तो प्रायः स्वर्ग के देवताओं का ही विस्तार से बयान है । वनस्पतिसृष्टि, सागर, नदियाँ आदि निसर्गसृष्टि तथा नरकलोक और तिर्यंच गति के जीव-इनका किंचित् मात्र भी उल्लेख नहीं है । इसकी पुष्टि के लिए हम यह कह सकते हं कि अगर कृष्ण ने समूचा विश्वदर्शन कराया भी है तो अर्जुन ने अपने मर्यादित सामर्थ्य के अनुसार जितनी चीजें देखीं उनका संक्षेप में बयान किया है । इसमें भी कृष्ण का ईश्वर या परमेश्वर होने का दावा है इसलिए देवों का वर्णन है । और युद्धप्रसंग होने के कारण राजाओं और आयुधों का वर्णन है । देवों के वर्णन में भी द्यावा-पृथिवी, मरुत्, इन्द्र, अग्नि आदि वेदकालीन देवता तथा 'वैदिक परंपरा की दृष्टि रखते हुए सृष्टि के निर्माता, धर्ता और संहारकर्ता के रूप में आनेवाले पौराणिक काल के देव भी इसमें वर्णित हैं ।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस आंशिक विश्वरूपदर्शन के बारे में गीता की दृष्टि से हम आपत्ति उठा नहीं सकते क्योंकि अर्जुन को जितना भी दिखाई दिया वह कृष्ण की मर्जी के अनुसार और वह भी अर्जुन की तात्कालीन दिव्यदृष्टि की मर्यादा के अनुसार ही है । कृष्ण ने यथार्थ रूप में समूचा विश्वदर्शन कराया है या नहीं इसके बारे में हम कुछ नहीं कह सकते । लेकिन अर्जुन को युद्ध की प्रेरणा देने हेतु जितना विश्वदर्शन करवाना आवश्यक था उतना कृष्ण ने जरूर करवाया है ।[१८] जैन दर्शन के अनुसार कोई भी व्यावहारिक हेतु साध्य करने के लिए वस्तुतः आध्यात्मिक दृष्टि से किसी अपरिपक्व जीव को आंशिक विश्वरूपदर्शन करवाना यह घटना तीर्थंकर, केवली सर्वज्ञ आदि वीतरागी व्यक्तियों के बारे में केवल असंभवनीय है ।

(६) उग्र विश्वरूप देखकर अर्जुन का भयभीत तथा व्यथित होना

ग्यारहवें अध्यायके ३२, ३३ तथा ३४ इन श्लोकों में उस विराट् पुरुष के रौद्र रूप का और असहनीय तेज का वर्णन अर्जुन करता है । अन्याय योद्धाओं को गिरिनदी के समान मृत्युमुख में प्रवाहित देखकर अर्जुन घबरा उठता है, काँपने लगता है और व्यथित भी होता है । जैन दर्शन की दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि अगर किसी सर्वज्ञ या केवली के ज्ञानोपयोग से विश्व का यथार्थ ज्ञान होता है, तो वह उस वस्तुनिष्ठ सत्य को सहजता से स्वीकार करते हैं । किसी भी प्रकार की घबराहट या खिन्नता की गुंजाईश भी नहीं होती । हम इतना ही कह सकते हैं कि वास्तविक पात्रता न होने के कारण, तथा कृष्ण की कृपा से युद्ध के भयावह रूप का दर्शन होने से अर्जुन घबरा गया है । केवली या अवधिज्ञानी ज्यादा से ज्यादा ऐसे युद्धपरिणाम शब्दों में बयान कर सकते हैं, प्रत्यक्ष दिखाते नहीं हैं ।

(७) कृष्ण द्वारा कालस्वरूप-कथन और युद्धप्रवृत्त करना

(अ) भयभीत अर्जुन विराट पुरुष का उग्ररूप देखकर भयभीत होकर कृष्ण से पूछता है, 'आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो ?' इसके बाद कृष्ण विराट पुरुष के रूप में उसे बताता है कि, 'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः ।' इस काल को भयानक रौद्र रूपवाले, संहारक, भीषण दंष्ट्रावाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवता के रूप में प्रस्तुत किया है। युद्ध में मरने वाले योद्धे इस कालमुख में प्रविष्ट होते हुए देखनेवाले अर्जुन से कृष्ण कहता है कि 'मैं वही विराट पुरुष अब काल के रूप में परिणत हुआ हूँ ।'

हम प्रत्यक्ष-व्यवहार में भी अनुभव करते हैं कि प्रचंड चक्रवात, धूलिवात, सागरप्रकोप, भूकंप, ज्वालामुखी तथा महाभीषण युद्ध आदि प्रसंगों में मानव, पशु-पक्षी, वनस्पतियों का संहार देखकर हमें लगता है कि ये 'प्रत्यक्ष कालपुरुष, यम तथा मृत्युदेवता का तांडवनृत्य है ।' लेकिन यह अनुभूति और तत्त्वतः 'काल' नाम 'द्रव्य' या 'पदार्थ'–इसमें कुछ मेलजोल है या मानवीय भावभावनाओं का 'काल' पर किया हुआ प्रत्यारोपण है ? – इस पर सूक्ष्मता से गौर करना चाहिए ।

सृष्टि की विविध घटनाओं का स्पष्टीकरण करने के लिए कालवाद, स्वभाववाद, परिणामवाद, कर्मवाद, नियतिवाद, समुच्चयवाद आदि अनेक दृष्टिकोण विचारवंतों ने अपनाये हैं । गीता में ही अठारहवें अध्याय में अधिष्ठान, कर्ता, करण, कर्म (विविध चेष्टा) तथा दैव ये पाँच कारण माने गये हैं ।[१९] महाभारत में अन्यत्र 'राजा कालस्य कारणम्' आदि वचन प्रसंगोपात्त आते हैं । तथापि उन वचनों को प्रासंगिक तथा अर्थवादात्मक मानना ही ठीक है ।

जैन दर्शन के अनुसार भी हरेक कार्य को उपादान तथा निमित्तकारण होते हैं । तथापि 'काल' कोई घटना में साक्षात् निमित्त नहीं होता । काल षड्-द्रव्यों में से एक है तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार 'काल परिवर्तनका आधार है ।'[२०] वस्तुओं के परिवर्तन देखकर हम काल का अस्तित्व जानते हैं । वास्तव में वह स्वयं अनादिअनंत और परिवर्तन से परे है । जैन दर्शनने 'मृत्यु' नामक देवता की परिकल्पना ही नहीं की है । यमदेवता, उसके सहकारी(दूत), उसके पाश, आदि की जैनदर्शन में कुछ संभावना नहीं है। हर एक का आयुष्कर्म होता है ।[२१] उस कर्म के क्षीण होते होते इस जीवनपर्याय (गतिपर्याय) की मर्यादा समाप्त होनेसे, किये हुए कर्म के अनुसार जीव दूसरी गति में गमन करता है । 'मृत्यु के द्वारा प्राणहरण' नहीं होता, हरेक प्राणी अपना आयुष्य-कर्म समाप्त होने पर कालवश होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ब) 'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्' यह कृष्ण ने अर्जुन को दिया हुआ आदेश या प्रेरणा है । जैन दर्शन भी मानता है कि हमें सुख-दुख आदि देने में विविध निमित्त होते हैं । किंबहुना ? जीव को विशिष्ट गति में जन्म, माता-पिता, सगे-संबंधी, स्वजन-मित्र-शत्रु, परिस्थिति (हालात) इन्हीं सुख-दुःखों की अनुभूति के लिए निमित्तमात्र होते हैं । किसी की मृत्यु में निमित्त बनने की यह प्रेरणा जैन दर्शन की दृष्टि से सरासर गलत है। 'इसको तो मृत्यु आनेवाली ही है, मैं सिर्फ निमित्तमात्र हूँ' ऐसा गलत संदेश अगर तत्त्वज्ञान के आधार से जाता है तो दुनिया में तहलका मच सकता है । वैयक्तिक दृष्टि से तो हरेक आचारसंपन्न व्यक्ति ने दूसरों को दुःख देना या मृत्यु देने के विचार से सदैव दूर रहने का प्रयास करना चाहिए । जैन दर्शन की दृष्टि से कीट-पतंग-वनस्पति को भी दुःख नहीं पहुँचाना है,[२२] तो मानव-हत्या, विचार के आस-पास भी नहीं होनी चाहिए।

अर्जुन को क्षत्रियधर्म का पालन करने का आवाहन करना व्यवहार नयसे तो ठीक है, परंतु दूसरों के वध के लिए निमित्तमात्र होने की प्रेरणा देना जैन दर्शन से बिलकुल सुसंगत नहीं है ।

(८,९) भयग्रस्त अर्जुन का अद्भुत विराट पुरुष को बारबार वंदन; अपने पूर्व-वर्तन की लज्जा तथा पूर्वरूप में आने की विनती

गीता में श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के चार पहलुओं का दर्शन इस ग्यारहवें अध्याय में होता है । यही इस अध्याय की विशेषता है । इस प्रसंग तक कृष्ण अर्जुन का भाई, सखा, सारथी तथा मार्गदर्शक है । इस अध्याय में प्रथम कृष्ण सहस्र मस्तक, बाहु, मुख, नेत्रवाला विराट पुरुष बन जाता है । काल के रौद्र रूप में भी सामने आता है । विस्मयचकित और भीतिग्रस्त अर्जुन के बार-बार वंदन तथा विनती से सौम्य चतुर्भुज विष्णरूप में दिखाई देता है । थोडी देर बाद दो हाथवाले वासुदेव कृष्ण के रूप में अवस्थित हो जाता है । इस अध्याय में जितनी अद्भुतता और रोमांचकता है, वह जैन दृष्टि से परखने के पहले हम इसका सोचविचार करेंगे कि जैन इतिहास में और आगमों में इस प्रकार के अद्भुत प्रसंग आये हैं या नहीं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खुद भगवान् महावीर के चरित में अद्भुतता के अंश कई बार पाये जाते हैं। त्रिशला रानी के चौदह स्वप्न,[२३] हरिनैगमेषी देव के द्वारा देवानंदा ब्राह्मणी के उदर से गर्भस्थ बालक का अपहरण और त्रिशला के उदर में स्थापन,[२४] अंगुष्ठ द्वारा मेरुपर्वत का चलन,[२५] उनके ३४ अतिशय (अद्भुत),[२६] गोशालक द्वारा छोडी गयी तेजोलेश्या से यक्षद्वारा संरक्षण,[२७] गौतम गणधर के मन में उठे हुए प्रश्नों को जानकर उनका समाधान करना,[२८] इस महिमा से प्रभावित होकर ग्यारह ब्राह्मणों ने महावीर के शिष्य बनना[२९] आदि कितनेक अद्भुत यही सिद्ध करते हैं कि भगवान् महावीर का जनमानस पर इतना प्रभाव होने का एक कारण यह अद्भुतता भी है।

केवलियों ने समुद्घात के द्वारा अपने आत्मप्रदेश चहूँ ओर फैलाना,[३०] आचार्य कुन्दकुन्द का चारण ऋद्धि से महाविदेह क्षेत्र गमन,[३१] अन्यान्य जैन मुनियों का आकाशगमन, प्रभव ने किया हुआ अवस्वापिनी विद्या का प्रयोग,[३२] स्थूलिभद्र द्वारा सिंह का रूप धारण करना[३३] आदि अनेक अद्भुत कृत्यों के निदर्शन जैन साहित्य में विशेषतः चरित-साहित्य में भरे पडे हैं। अगर जैनियों का इन सारी अद्भुत और रोमांचक घटनाओं पर विश्वास है तो गीता के इस विश्वरूपदर्शन की अद्भुतता पर संदेह करना ठीक नहीं होगा।

दोनों परंपराओं में अद्भुतता के अंश होने के कारण हम एक की अद्भुतता ग्राह्य और दूसरे की त्याज्य ऐसा तो मान नहीं सकते। अगर करेंगे भी तो साम्प्रदायिक अभिनिवेश ही होगा। अद्भुतता के बारे में हम एक-दूसरे की निन्दा नहीं कर सकते। दोनों परंपराओं में भगवान महावीर और भगवान कृष्ण अनेक ऋद्धियों से सम्पन्न हैं। फर्क इतना ही है कि वैदिक परंपरा में कृष्ण को 'योगेश्वर' कहा है। चरितों में रस और अलंकार की दृष्टि से अद्भुतता लायी जाती है। यह विधान अगर सत्य है तो वह दोनों के बारे में सत्य है। भगवान महावीर के पास ३४ अतिशय हमेशा उपस्थित रहते हैं। कृष्ण ने भी प्रसंग आते ही अपने योगैश्वर्य का प्रकटन किया है। अगर इन अद्भुतताओं की योजना महावीरचरित में धर्मप्रभावनार्थ है तो कृष्णचरित में भी धर्मसंस्थापनार्थ है। जैन दर्शन के चिकित्सक विचारवंतों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने भगवान महावीर के व्यक्तित्वकी खोज लेकर यह विचार प्रकट किये हैं कि ये सारी अद्भुतताएँ दूर हटाकर भी उनके कार्यकर्तृत्व का महत्त्व अनन्य साधारण है। कृष्ण के बारे में भी यही विधान सत्य है। हालाँकि दोनों के कार्यक्षेत्र इस संदर्भ में अलग-अलग होंगे। भगवान महावीर आध्यात्मिक दृष्टि से महान आत्मा हैं तो भगवान कृष्ण निपुण राजनीतिज्ञ एवं कुशल प्रशासक हैं।

यद्यपि जैन दर्शन में अद्भुतता है तथापि विश्वस्वरूप का वर्णन जिधर कहीं पाया जाता है वह गीता की विश्वदर्शन की तरह रौद्र, भीषण और अद्भुत नहीं है यथातथ्य ही है। फिर भी स्वर्ग और नरक के सुख-दुःखों के वर्णन में ये अद्भुतता के अंश दिखाई पडते हैं।[३४] तो फर्क इतना ही हुआ कि भगवान महावीरने या अन्य किसी ने अद्भुतता दिखाकर किसी महासंग्राम की प्रेरणा नहीं दी है और कृष्ण तो इस अध्याय में स्पष्ट कहते हैं कि-

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥
(गीता ११.३३)

(१०) ईश्वरी कृपा से इस प्रकार का विश्वदर्शन, अन्य साधन से नहीं।

अर्जुन भयभीत होकर कृष्ण से चतुर्भुज रूप धारण करने की प्रार्थना करता है। कृष्ण योगशक्ति से उस प्रकार का रूप धारण करता है। अगले तीन श्लोकों में विश्वरूप दर्शन में ईश्वरी कृपा का स्थान तथा महत्त्व बताता है। वह कहता है, 'मैंने प्रसन्न होकर आत्मयोग से यह रूप तुझे दिखाया है। अनन्त और आदिरूप (सब का आदि) विश्व का यह तेजोमय दर्शन तेरे सिवाय किसी दूसरे को नहीं दिखाया गया है। इस मनुष्य लोक में वेद, यज्ञ, अध्ययन, दान, विविध क्रिया तथा उग्र तप से भी यह नहीं किया जाता।

जैन दर्शन की दृष्टि से इस निवेदन में कई आलोचनार्ह अंश हैं। गीता की दृष्टि से देखें तो भी कई मुद्दे उभरकर सामने आते हैं। सांख्ययोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो या ज्ञानयोग, ध्यानयोग हो या निष्काम कर्मयोग हरेक में गीता आखिर में भक्ति, श्रद्धा, अनन्यभाव का महत्त्व बताती है । भक्ति को 'राजविद्या राजगुह्य' कहती है । योगियों में भी योगी भक्त को श्रेष्ठ बताया है ।[३५] सांख्य तथा ज्ञानमार्ग में भी 'ज्ञानी भक्त' को ऊँचा स्थान दिया है ।[३६] इस अध्याय में तो स्वतंत्र रूप से ईश्वरी कृपा का महत्त्व बताया है । मतलब यह हुआ की भक्तिमार्ग तो श्रेष्ठ हैं, लेकिन इस प्रकार का अद्भुत विश्वदर्शन आदि करना है तो अनन्य भक्ति के सिवा दूसरी भी चीज उतनी ही आवश्यक है, उसका नाम है 'ईश्वरी कृपा' । यह कृपा ही आखिर सब साधनों के ऊपर है ।

जैन दर्शन अपना कर्म और पुरुषार्थ के सिवा इस प्रकार की ईश्वरी कृपा में विश्वास नहीं रखता । वस्तुतः ईश्वरी कृपा तो दूर, इस प्रकार के ईश्वर या परमेश्वर में ही विश्वास नहीं रखता । जैन दर्शन में किसी भी तरह की परावलंबिता नहीं है । आत्मतत्त्व पर श्रद्धा, ज्ञान तथा चारित्र के बल पर मनुष्य अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है । इस के बल पर ही उसे मनःपर्याय, अवधि तथा केवलज्ञान की प्राप्ति हो सकती है ।[३७] विश्व का स्वरूप भी वह रत्नत्रय की आराधना से जानता है, उसके लिए अलग से किसी सद्गुरु अथवा परमेश्वरी कृपा की आवश्यकता नहीं है । वेद (श्रुतज्ञान), ज्ञानप्राप्ति (स्वाध्याय, अध्ययन), दान, तप आदि सब आस्रव रोकने के तथा संवर के साधन, याने 'चारित्र' है ।[३८] श्रद्धायुक्त चारित्रपालन से जीव ऊर्ध्वगामी होकर अंतिम ध्येय याने मोक्ष तक पहुँचता ही है । इस गति को रोकना या बढाना किसी भी दूसरी शक्ति के वश में नहीं है ।

सारांश, परमेश्वरी कृपा का होना न होना जैन दर्शन के मुताबिक कोई मायने नहीं रखता । खुद के बलपर जो विश्वरूपदर्शन जैन दर्शन में होगा, वह निःसंशय इस प्रकार रौद्र, अद्भुत और चौंका देने वाला नहीं होगा। इसीलिए केवली कभी भयभीत, कंपित भी नहीं होते । आध्यात्मिक उन्नति के विविध मार्गों को यकायक दुय्यम स्थान देकर 'ईश्वरी कृपा' की सर्वोपरिता प्रस्तुत करना खुद वैदिक परंपरा के अनुसार भी तर्कशुद्ध नहीं मालूम पडता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. (अ) कृष्ण का आखिरी कथन : अनन्य भक्ति द्वारा परमेश्वर का दर्शन

कृष्ण के कथनानुसार जब ईश्वरी कृपा और अनन्य भक्ति का इस प्रकार संगम हो जाता है तभी यह विश्वदर्शन या परमेश्वरदर्शन शक्य है। इसमें यह मुद्दा उपस्थित किया जा सकता है कि चलो, गीता की दृष्टि से सही यह अगर मान्य किया तो भी एक आपत्ति आती है। क्या अर्जुन श्रीकृष्ण का अनन्य भक्त है ? युद्ध के इस प्रसंग तक तो अर्जुन कृष्ण को भाई, सखा, मार्गदर्शक मान रहा था। उसी तरह से कृष्ण के साथ पेश आता था। यह इसी अध्याय में अर्जुनने कबूल किया है।[३१] अर्जुन एक क्षत्रियवंशीय गृहस्थ है। अभी तक तो उसने भक्तिमार्ग की आराधना नहीं की है। अनन्य भक्ति से ईश्वर का ज्ञान, दर्शन अगर ईश्वर में प्रवेश अगर शक्य भी है तो अर्जुन 'अनन्य भक्त' कहलाने योग्य है क्या ? कृष्ण ने इस अद्भुत दर्शन की जो लीला दिखाई उसके बाद अर्जुन कृष्ण का अनन्य भक्त बन सकता है। उसने कृष्ण को बार बार किया हुआ वंदन इसी बात का द्योतक है। बात तो बिलकुल विपरीत हुई। अर्जुन को अनन्य भक्ति से यह दर्शन नहीं हुआ, इस दर्शन से वह अनन्य भक्त बना। केवल अर्जुन को ही यह विश्वदर्शन कराने में कृष्ण का पक्षपातित्व ही सिद्ध होता है, जो उसके परमेश्वर होने में बाधास्वरूप मालूम पडता है।

(ब) परमात्मस्वरूप कौन हो जाता है ?

गीता में कृष्ण ने कई बार 'अहं', 'मम', 'मां', 'मत्' इन शब्दों का प्रयोग किया है। कृष्ण =ईश्वर =परमेश्वर =परमात्मा ये समीकरण अगर मान्य किया जाय तो इस वाक्य रचना में जैन दर्शन के 'जीव' और 'परमात्मा' शब्दों के भावार्थ ध्यान में रखकर जो बात कही है, वह सैद्धान्तिक दृष्टि से जैन दर्शन से अचानक मेल खाती है।

"जो भी जीव (ईश्वर जैसी) समत्वदृष्टि से कर्म करता है, आत्मध्यान में लीन है, आत्मा का भक्त है, सारी सांसारिक आसक्तियों से परे है, प्राणिमात्रों के प्रति द्वेषभावरहित है, वह खुद परमात्मस्वरूप हो जाता है।" इस अध्याय के अंतिम श्लोक का भावार्थ हमें किसी भी जैन अध्यात्मग्रंथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में मिल जाए तो आश्चर्य की बात नहीं है ।

सैद्धान्तिक भेद इतना ही है कि जैन दर्शन में 'परमेश्वर या परमात्मा के प्रति जाने की' बात नहीं हो सकती । जीव खुद ही परमात्मा है । रत्नत्रय की आराधना से जब जीव के सब कषाय और कर्मावरण दूर हो जाएँगे तो वह खुद ही परमात्मा बन जाएगा ।।४०

अभी तक ग्यारहवे अध्याय के मुद्दे ध्यान में रखकर मूल्यांकन किया है । अभी कुछ अन्य मुद्दों की विचारणा करके उपसंहार की ओर बढ़ेंगे ।

विश्वरूप-दर्शन की जैन दार्शनिक दृष्टि से संक्षिप्त विचारणा

❋ दोनों परंपराओं ने विश्वदर्शन के बारे में 'पुरुष' की संकल्पना अपनायी है । गीता ने अद्भुत विराट पुरुष प्रस्तुत किया । जैन दर्शन त्रैलोक्य का बाह्याकार विशिष्ट पुरुषाकृति बताता है, उसमें अद्भुतता नहीं है ।

❋ महाभारत में कृष्ण साक्षात् ईश्वर, परमेश्वर, परमात्मा एवं विष्णु का अवतार है । धर्मसंस्थापना, साधुपरित्राण और दुष्कृतविनाश इसके प्रयोजन हैं । अवतारसमाप्ति के बाद वह मूलरूप में विलीन होता है । जैन दर्शन के अनुसार वह अनेकऋद्धिसंपन्न 'वासुदेव' तथा ६३ श्लाघा (या शलाका) पुरुषों में एक है । शत्रुहनन इत्यादि कार्यों के परिणामों के अनुसार वह नरकगति में गया है । अगले भवों में मोक्षगामी होगा ।

❋ श्रीमद्भागवत में कृष्ण ने यशोदामाता को अपने मुख में विश्वरूपदर्शन करवाया था, परंतु इस विश्वदर्शन से वह भिन्न है । जैन दर्शन में तीर्थंकर, केवली आदि विश्वरूप कथन करते हैं, प्रत्यक्ष दिखाते नहीं ।

❋ अर्जुन कृष्ण की कृपा से दिव्य दृष्टि पाता है । संजय तथा व्यास को भी दिव्य दृष्टि है । जैनदर्शन में किसी भी प्रकार का दर्शन कोई एक दूसरे को नहीं करवा सकता । दर्शन तो उसी जीव के दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम आदि से होता है, किसी की कृपा से नहीं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❋ कृष्ण ने खुद के स्वरूप में यह अत्यद्भुत दर्शन करवाया। यद्यपि जैन दर्शनानुसार केवली 'लोकपूरण समुद्घात' के द्वारा अपने आत्मप्रदेश समूचे विश्व में फैला सकते हैं, तथापि यह केवल सैद्धान्तिक मान्यता है। इसका दर्शन वे अन्यों को नहीं करवाते।

❋ कृष्ण के कथनानुसार यह दर्शन केवल ईश्वर की 'अनन्य भक्ति' से होता है। खुद गीता की दृष्टि से भी अर्जुन कृष्ण का अनन्य भक्त नहीं सखा, बंधु, सारथी है। जैन दर्शन के अनुसार किसी भी प्रकार का ज्ञान खुद का पुरुषार्थ तथा आत्मशुद्धि पर निर्भर है, भक्ति पर नहीं।

❋ कृष्ण के कथनानुसार विश्वदर्शन में 'ईशकृपा का बल' अंतर्भूत होता है। जैन दर्शनानुसार 'आत्मबल' ही सर्वश्रेष्ठ है। आत्मश्रद्धा, सम्यक्ज्ञान तथा शुद्ध आचरण से ही सब संभव है, गुरुकृपा आदि से नहीं।

❋ गीता का विश्वरूपदर्शन अनेक शोधकर्ताओं ने प्रक्षेप-स्वरूप ही माना है। वैदिक परंपरामें इस स्वरूप के दर्शन की जो महत्ता है, उसी के कारण यह गीता में समाविष्ट हुआ है। तार्किक संगति का दृष्टि से देखा जाय तो युद्धभूमि पर इस प्रकार अद्भुत-दर्शन करवा के अर्जुन को युद्ध-प्रेरित करना सुसंगत नहीं लगता।

❋ जैन दर्शन अनेकान्तवादी है। इस दृष्टि से विश्वरूपदर्शन पूर्णतः असत्य है ऐसा भी हम मान नहीं सकते। उसमें भी शक्यता के कुछ अंश तो हो सकते हैं। जैन दर्शन ने वासुदेव कृष्ण के व्यक्तित्व को और यौगिक शक्ति को मान्यता दी है।

हम पहले ही देख चुके हैं कि जैन इतिहास-पुराणों में भी अद्भुतता का दर्शन कई बार होता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से तो नहीं लेकिन काव्यात्मकता, अद्भुतता तथा भक्तिमार्ग की प्रभावना की दृष्टि से ही इस विश्वरूप दर्शन को हम देख सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भ

१. महाभारत भीष्मपर्व अध्याय क्र. २५ से ४२
२. गीता अध्याय क्र. २
३. गीता अध्याय क्र. ४, ६, ७, ९, १०, १३, १४, १५, १६.
४. गीता अध्याय क्र. ३, ५, ८, ११, १२, १७, १८
५. गीता १०.४१
६. गीता ११.४
७. सातवळेकर, गीता अध्याय क्र. ११ व्याख्या
८. आचारांग १५. ३९(७७३), स्थानांग - ९.६२
९. गीता ११.७
१०. एवमक्खंति तिलोगदंसी, आचारांग १५.४०; सूत्रकृतांग १.१४.१६
११. तत्त्वार्थसूत्र २.४७
१२. गीता ११.३८
१३. गीता ११.८
१४. आचारांग २.१५.१; महावीरचरियं, (गुणचंद्र पृ० ९)
१५. तत्त्वार्थसूत्र १.२३
१६. तत्त्वार्थसूत्र १.३२
१७. गीता ९.१०
१८. गीता ११.३४
१९. गीता १८.१४
२०. तत्त्वार्थसूत्र ५.२२
२१. तत्त्वार्थसूत्र ८.११
२२. आचारांग १.१.७.१७६; आचारांग १.२.३.६३; तत्त्वार्थसूत्र ७.८
२३. कल्पसूत्र (ललवाणी) सूत्र ३२
२४. कल्पसूत्र (ललवाणी) सूत्र ३०
२५. महावीरचरियं पृ. ११८
२६. समवायांग ३४
२७. महावीरचरियं पृ० २७९
२८. आवश्यक निर्युक्ति ६००
२९. आवश्यक निर्युक्ति ६०१
३०. स्थानांग ८.११४
३१. पंचास्तिकाय प्रस्तावना, प्रो. ए. चक्रवर्ति नयनार, पृ० ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. धर्मविधिप्रकरण १२३ ब. ११
३३. **(थूलभद्दो) सीहरूवं विउव्वइ**-आवश्यक हारिभद्रीय टीका, पृ० ६९८
३४. तत्त्वार्थसूत्र ३.४, ३.५;
३५. तत्त्वार्थसूत्र ४.२१
३६. गीता ६.४७, ७.१८
३७. तत्त्वार्थसूत्र १०.१; उत्तराध्ययन २८.३५
३८. तत्त्वार्थसूत्र ९.१; ९.२
३९. गीता ११.४१
४०. तत्त्वार्थसूत्र १०.२;
कम्मकलंकविमुक्को परमप्पा भण्णए देवो । मोहपाहुड - ५; ४३

C/o. **सन्मति तीर्थ**
फिरोदिया होस्टेल, ८४४ शिवाजीनगर,
पुणे ४११००४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org